Chapter-5

पंचम अध्याय

प्रासंगिक तथ्यों का समावेश तथा सामयिक संचेतना

वक्त की धड़कनों को सुनने और समझने वाले देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' एक ऐसे विरल नवगीतकार हैं, जिन्होंने अपने समय का प्रतिनिधित्व किया है तथा समसामयिक परिस्थितियों से एक जुझारु योद्धा की तरह संघर्ष भी किया है। वे सुविधाजीवी अनुदानों के मुखापेक्षी कभी नहीं रहे और उन्होंने कभी भी अपने मानद मूल्यों से समझौता भी नहीं किया। सबसे अधिक ध्यातव्य तथ्य यह है कि उनके नवगीत आम-आदमी की हिमाकत करते हुए व्यवस्था की अनीतियों को खुली चुनौती देती हैं। उनका समग्र सृजन चाहे वह गीत, नवगीत, गजल, दोहा या अन्य किसी भी विधा में रचा गया साहित्य अपने समय का जागरुक प्रहरी रहा है, जो समाज और परिवार की सांस्कृतिक व्यवस्था पर पड़े किसी भी प्रहार के सामने लाल आँखें करते हैं और किसी भी युद्ध के लिए कलम-कागज लेकर तैयार रहे हैं।

किसी राजनीतिक दल के नारों के तहत उन्होंने कभी भी अनुबंधित या विज्ञापित सोच को स्वीकार नहीं किया। उनका अपना निर्धारण एकदम निजी और लीक से हटकर रहा है, यही कारण है कि उन्हें किसी खेमे में या दलबन्दी में बाँधकर नहीं देखा जा सकता।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नवगीत-लेखन की श्रृंखला में सबसे अलग और विरल दिखाई देते हैं। उन्होंने कविता के संदर्भ को तथा मानवीय संवेदना को कभी उपेक्षित नहीं रखा। यही कारण है कि उनके नवगीतों में सम्प्रेषण का आवेश सदैव बना रहता है और पाठक या श्रोता भावमग्न होकर कविता के सौन्दर्य में सम्मोहित होकर रह जाता है।

समाज में साहित्यकार की भूमिका एक ऐसे सजग प्रहरी की तरह होती है जो हर समय जागरुक रहकर किसी भी अनिष्ट के सामने वक्त को खबरदार करता है। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ऐसे ही नवगीतकार हैं, जिन्होंने अपने काव्य में प्रासंगिकता से जुड़े हुए अहम् मुद्दों को उठाया भी है और संघर्ष की मुद्रा में उसके प्रतिकार के लिए तैयार भी रहे हैं। उन्होंने जो भी बात जहाँ और जिस विषय में उठायी है वहाँ उनके कथ्य की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता। उनके गीतों में कहीं भी मध्यकालीन काव्य की अनुबंधित रुड़ प्राचीरों का अनुभाष नहीं होता, समय के साथ कदम बढ़ाते हुए आगे बढ़ते हैं और वक्त की धड़कनों के साथ जिन्दा रहने की अहमियत व्यक्त करते हैं।

उनके नवगीतों में कथ्यों की प्रासंगिकता सर्वत्र मुखर होकर सामने आयी है। वह जब किसी भी भावात्मक कथ्य को सम्प्रेषित करते हैं तब उनके कथ्य में प्रासंगिक संदर्भों की चुभन अवश्य अनुभव होती है जैसे-

''आ पहुँचा सूर्य–अहेरी
आँखों में
दहके अंगारे
प्रत्यञ्चा धूप की खिंची
तारों की
करती बौछार
पगडण्डी बाँटने लगी
पाँवों को
शूल की चुभन।''[1]

इसी तरह जब कवि सामयिक संदर्भों से जुड़कर अपनी आंतरिक पीड़ा को व्यक्त करता है तब उसके जीवन्त एहसासों की प्रासंगिकता रेखांकित की जा सकती है। जैसे–

''धूप, रोशनी,
जुगनू, दीपक,
चिनगारी बनकर
तिमिर–व्यूह से
लड़ने को जो
खड़ा रहा तनकर
बूढ़ा सूरज वही विवश हो
बना आत्मघाती
जब रथ के घोड़ों ने थककर
घुटने मोड़ लिये।''[2]

आज के रूखे और रसहीन व्यावसायिक वातावरण में कवि कहीं भी संवेदनाओं के पुष्पित अनुकरणों का अनुभाष नहीं कर पाता। वह कहता है कि–

''लपटें बरसाते है बादल
छू–छू कर जलता दावानल
अंगारों ने थाम रखा है
पुरवाई का रेशम आँचल
संवेदन के
झुलसे अंकुर

पिघल रहे बारुदी पत्थर।"[3]

कवि बहुत दूर-दूर तक आत्मीय संवेदनाओं के शून्य का अनुभव करता है और फिर उसका भावुक हृदय एक मौन पीड़ा के गहन अन्धकार में डूब जाता है और कह उठता है-

"ऊब, थकन का पीकर
दिनभर तेजाब
साँझ ढले झर जाते
भोर के गुलाब
रंगों, गंधों का
उन्माद
चुक जाता
बन जाता खाद।"[4]

आज की फटेहाल जिन्दगी से बेवश और परेशान होकर देश की कुव्यवस्था और उसके जिम्मेदार नेतृत्व पर कवि अपना असंतोष इन पंक्तियों में व्यक्त करता है-

"हर तरफ ही
गूँजती हैं चीख
आहें औ कराहें
त्राहि-त्राहि पुकारती हैं
शून्य में
बेवश निगाहें।"[5]

आज हमारे समाज में भय, कुंठा, त्रास, अनाचार, अन्याय, अमानवीयता का ऐसा वातावरण है कि आम आदमी को मंजिल तक जाने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। कवि का आवाहन-

"आम आदमी परेशान है
मंजिल तक ले जाने वाली
लगड़ी है सारी तजवीजें।"[6]

साहित्य में पारदर्शी सोच

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भाँति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। समाज के रूप-रंग, बुद्धि-ह्रास, उत्थान-पतन, समृद्धि-दुरव्यवस्था के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी प्रकार साहित्य संस्कृति का प्रधान वाहन होता है। संस्कृति साहित्य के भीतर मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार-प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध छवि होने के कारण समाज का मुकुर है।

साहित्य का इतिहास पूर्वोक्त सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है। साहित्य भारतीय समाज के भव्य-विचारों का रुचिर-दर्पण है। साहित्य के रूप, निर्माण तथा विकास के ऊपर भारतीय तत्वज्ञान का विशेष प्रभाव पड़ा है। नैराग्य की कालिमा-दर्शन के गगन-मंडल को कतिपय क्षणों के लिए भले ही मलिन और अंधकारपूर्ण बनाये रखती हो, परन्तु आशावादिता का चन्द्रोदय उसे प्रकाश से ज्योतित तथा शान्ति से स्निग्ध सर्वथा बनाये रखता है।

साहित्य और मानवीय धर्म

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है और भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। भारतीय धर्म का आधार स्तंभ है आस्तिकता, सर्वशक्तिशाली भगवान की जागरुक सत्ता में अटूट विश्वास। भक्त भगवान के चरणाविन्द में अपने आपको लुटा देने में ही जीवन की सार्थकता मानता है।

कथ्य की आन्तरिक बुनावट

मानव की प्रकृति स्वाभावतः कौतुक तथा विस्मय की ओर आकृष्ट होती है। नित्य प्रति व्यावहारिक जीवन से परिचित कार्यकलाप से जहाँ कुछ भी नवीनता तथा विलक्षणता दृष्टिगोचर होती है, वहीं विस्मय की उद्गमभूमि है। भारतवर्ष के विविध-रंगी वातावरण में विस्मय का स्थान तथा प्रसार बहुत ही अधिक है। क्षितिज पर सुनहली छटा छिटकाने वाली तथा प्रभापुञ्ज को विखेरने वाली उषा का दर्पण जैसा हृदय में आश्चर्य उत्पन्न करता है, वैसा ही विस्मय उत्पन्न करता नभमण्डल में रजत रश्मियों को विखेरने

वाले तथा नेत्र में शीतलतामयी छटा फैलाने वाले शीत रश्मि का उदय हुआ जो 'कथा' के नाम से कौतुकजन्य कथाओं का उदय प्रत्येक देश के साहित्य में हुआ है और होता है।

शैली विन्यास

प्रत्येक रचनाकार की अपनी भाषा और शैली होती है, यही शैली रचनाकार के साहित्य की समय को रेखांकित करती है। साहित्यकार की सोच, अध्ययन, उसकी प्रवृत्ति तथा समग्र व्यक्तित्व का आभास इसी शैली के द्वारा ज्ञापित होती है। शैली के द्वारा ही कोई रचनाकार अपनी अलग पहचान दर्ज करा पाता है।

प्राचीन कवियों के काव्यों में स्वाभाविकता का साम्राज्य है। ये कवि मानव हृदय के सच्चे पारखी थे और सच्ची अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए इन्होंने 'रसमयी पद्धति' का आश्रय लिया। वाल्मीकि तथा व्यास पर, कालिदास तथा अश्वघोष पर कृतिम या आरोपित कविता लिखने का दोष समझदार आलोचक नहीं मढ़ सकता। अलंकारों की सजावट से चमत्कृत शैली का उदय सप्तम-अष्टम शताब्दी के अनन्तर ही हुआ है, इसका भी कारण है। सप्तम् अष्टम् शतक भारतवर्ष के साहित्य इतिहास में पांडित्य का युग रहा है। संस्कृत के आलोचक भामह ने तर्कप्रधान शास्त्र से भाव-प्रधान काव्य का विभेद दिखलाते हुए काव्य को स्पष्टतः 'आविद्वदङ्गनाबल-प्रसिद्धार्थ' लिखा है। काव्य केवल विद्वानों के पुष्ट दिमाग की चीज नहीं है, प्रत्युत शास्त्र से अनभिज्ञ स्त्रियों तथा बच्चों के भी समझ में आने वाली वस्तु है। यदि किसी काव्य को विशिष्ट पाठक ने ही समझा, तो क्या समझा ? वह काव्य होने पर भी 'अप्रतीतार्थ' दोष से दुष्ट काव्य ठहरा। काव्य का लक्षण सामान्य-जन है, विशेष-जन नहीं। प्रसन्न काव्य की यही निशानी है स्त्री तथा बच्चे भी उतनी ही आसानी से समझे जितनी आसानी से कोई विशेष शिक्षित-जन। माधुर्य तथा प्रसाद गुण काव्य का प्राण माना जाता है।

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नाम मात्र से ही 'देवेन्द्र' या 'इन्द्र' हैं। उनमें साहित्य के राजा बनने की ललक कभी भी नहीं देखी गयी। 'इन्द्र' जी अपने लेखकीय दायित्व को निभाते हुए राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय समस्याओं एवं जीवन से जुड़ी मानसिकता को अपने लेखनी के नोंक पर उतारा है निम्नलिखित नवगीतों में समाज का आन्तरिक द्वन्द्व को व्यक्त करती उनकी विशिष्ट शैली सामने आती है-

''शामिल हम युद्ध में न थे
सेनाओं में तटस्थ थे

वक्त कर रहा विवश हमें
नारों की भाषा अब बोले
लपटों में फैंक कर रचा।"[7]

साहित्य में नव्यता का समावेश अपनी समकालीन वास्तविकताओं का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करने मात्र से नहीं होता है। ऐसा करने से हमेशा खतरा बना रहता है कि गीत कही पत्रकारोचित सपाट बयानी की ढलानों पर फिसल तो नहीं रहा। मानवीय मूल्यों का ह्रास और सांस्कृति मूल्यों का विघटन देवेन्द्र जी के नवगीतों की सांस-सांस में धड़कता दिखाई देता है। इतिहास और वैभवपूर्ण अतीत को मूर्त रूप देने में उनके ये नवगीत बेजोड़ हैं। यहाँ द्रष्टव्य है-

"दिन पाटलिपुत्र हुए
राते वैशाली।
खोजती तथागत को
कहीं आम्रपाली।"[8]

साहित्य की जितनी भी विधाएँ हैं उनमें 'गीत' जन्म से लेकर श्वास के अन्तिम बिन्दु तक मनुष्य का सर्वाधिक साथ निभाता है। सुख हो या दुःख हो मिलन हो या विरह हो गीत ने सबको अन्तस में संजोया है। गीत सदैव गतिशील रहा है इसकी गतिशीलता को बनाये रखने के लिए कितने गीत शिल्पी लगे हुए हैं। कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' इन्ही के बीच अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराते रहे हैं-

"कल-तक तो काजल था
लयवन्ती
पलकों का
आँसू-सा बाहर अब
कर दिया गया हूँ।
मन्त्रित गंगाजल था
पश्यन्ती
पूजा का
मदिरा-सा बोतल में
भर दिया गया हूँ।"[9]

ईमानदारी और प्रमाणिकता 'इन्द्र' जी की अलग पहचान बनाती है। व्यक्तिगत पीड़ा, घुटन, निराशा को कवि व्यक्त करता है। ऐसी कविताएँ अन्दर तक झाँकने के अवसर प्रदान करती है तथा मनुष्य होने के लिए प्रेरित करती है। कवि की वाणी मुखर हो उठी है-

"चलो इस दीप को भी अब
नदी तट पर सिरा आएँ।
जलाया था इसे कल
दीप था यह नेह-नातों का
विलम्बित गीत था वन में
अंधेरा था किरातों का
न अब गोधूलि के
पाटल कपोलों पर
थिरकती हैं।"[10]

बदलते जीवन-मूल्यों का स्पर्श

नवगीत की अन्तर्वस्तु आधुनिक मानव-मन की वैयक्तिक अनुभूतियों और लोक-संवेदना-जन्य बहुआयामी पहलुओं को प्रस्तावित करती हैं। यथार्थ के मरुस्थल में प्रतिभा कल्पना की दूरान्तवर्ती उड़ान भरकर नीलवर्णी लिपि अंकित कर अपनी पहचान स्वयं बन जाना कोई सहज कार्य नहीं है। ऐसी ही पहचान बनाने वाले कुछ गिने-चुने नवगीतकारों में श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने पिछले चार दशको से अनति संक्षिप्त काव्य-यात्रा में न केवल नवगीत को संगीतात्मक-लयात्मक सर्जना प्रदान की है बल्कि जिनकी अविराम गीत साधना में काव्य-चेतना के ऐतिहासिक विकास-क्रम में एक नया अध्याय भी जोड़ा है।[11]

मुझे लगता है कि आज गीत का स्वरूप कुछ भी हो पर प्रारम्भ में वह निश्चित रूप से लोक की कोख से उत्पन्न हुआ होगा। वस्तुतः लोक में संवेदना का आवेग अधिक मुखर होता है अतः उसकी अभिव्यक्त गीतमय हो उठी होगी। सम्भवतः प्रारम्भ में गीत का वही मूल रहा होगा जो विभिन्न स्थितियों की लम्बी यात्रा तय करता हुआ कालान्तर में छन्द और मात्रा के संयम में आबद्ध होकर भक्ति-गीत, श्रृंगार-गीत तो कभी छायावादी गीत के विभिन्न रूपों में पहचान बनाया होगा। किन्तु यदि हम गीत के इतिहास पर

दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि सभी प्रकार के गीतों के केन्द्र में व्यक्ति की निजता अधिक मुखर रही है। व्यक्ति अपने सुख-दुःख गीत के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाते रहे हैं। इसमें परिवर्तन या बदलाव तब आया जब नयी कविता का प्रादुर्भाव हुआ। गीतकारों को लगा कि निज तक सीमित रहने से गीत की क्षमता पर संदेह होने लगा है। अतः तब से गीत समाजोन्मुखी होते हुए स्व से पर तक को अभिव्यक्त देने लगा है। जिसको नवगीत की संज्ञा दी गई। नवगीत का स्वरूप बहुत व्यापक है। साथ ही यह भी भ्रम दूर हो गया कि गीत की क्षमता सीमित है।

जब मैं 'इन्द्र' जी के नवगीतों को देखती हूँ तो मुझे लगता है कि इनके नवगीतों का कैनवास बड़ा व्यापक व विस्तृत है। निरन्तर पारिवारिक समस्याओं से जूझते हुए 'इन्द्र' जी सृजन की लौ को कभी मद्धिम न पड़ने दिये। वे पूरी आस्था से लिखते रहे, नयी पत्रिकाओं को सहयोग देते रहे नवगीत की सम्भावनाएँ रेखांकित करते रहे। 'इन्द्र' जी ने नवगीत को न केवल कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर समृद्ध किया है वरन् समय-समय पर उसकी लड़ाई भी लड़ते रहे हैं।

चार दशकों से अधिक अपनी काव्य-यात्रा के दौरान 'इन्द्र' जी ने अनेक पड़ाव देखें और सफलता की कई मंजिलें तय की हैं। आठवे दशक आते-आते एक सफल एवं सशक्त नवगीतकार के रूप में 'इन्द्र' जी का नाम किसी परिचय का मुहताज नहीं रहा। अपनी रचनाओं के माध्यम से तथा डॉ. शम्भुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित 'नवगीत दशक' जैसी कृतियों से जुड़कर 'इन्द्र' जी ने नवगीत को एक ऊँचाई दी है। साथ ही यात्रा के साथ-साथ जैसे महत्वपूर्ण नवगीत संकलन का स्वयं सम्पादन कर नवगीत की प्रतिष्ठा में वृद्धि कर उसे समृद्ध एवं संपुष्ट बनाकर योगदान किया है।[12]

यह सत्य है कि नवगीत के प्रवर्तन ने हिन्दी के परम्परायुक्त गीत से आत्मा और कलेवर, अंतरंग और बहिरंग तथा काव्य और शिल्प के स्तर पर अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाई है देवेन्द्र जी ने लिखा है-

''आँसू तो मोती था
पलकों की सीपी का
हंसों ने
पंखों के आँचल में चुन लिया
बंधु कहाँ ले जाऊ मन की इस आग को
बाहर की हिम शीतल

शुचिता तो बिखरादी
जेठ की
दुपहरी में फूलों की गंध सी
बंधु किसे दिखलाऊँ भीतर के दाग को।''[13]

मानव-मन की अतल गहराइयों को, सामाजिक पीड़ा तथा टूटती हुई पहचान की अंतरंग अनुभूतियों और अनजान बनते रिश्तों की दर्द को जिस कलात्मकता के साथ व्यक्त किये हैं उससे जीवन की विसंगतियों तथा ढहते रिश्ते साफ नजर आते हैं-

''कैसे यहाँ मैं आ गया
यह तो नहीं मेरा शहर
गुमनामियों की धुन्ध में
डुबा हुआ हर चेहरा
हर आँख में है एकटूटा ख्याब
अश्कों से भरा
हर खुदकुशी देती यहाँ पर
जिन्दगी का वास्ता
उँगली पकड़ कर भीड़ को
चलना यहाँ हर रास्ता।''[14]

कवि जहाँ भ्रष्टाचार, अनीति, अत्याचार देखता है वहीं उसका व्यंग्य का स्वर खीझ में बदल जाता है। व्यंग्य के पीछे कवि की हृदय की पीड़ा छिपी है, जो पाठक के हृदय को बेध देती है कवि 'इन्द्र' व्यंग्य करता हुआ कहता है -

''छोड़िये मियाँ तटस्थता
धारा के संग-संग बहिये
दुनियाँ का गम ढो-ढो कर
आप परेशान हो रहे
वे बंजर चट्टानें हैं
आप जहाँ गीत बो रहे
बुल बुल को मत सराहिये
कौवों के होकर रहिये।''[15]

मँहगाई की मार से ग्रसित आम आदमी की ताबेदारी करता हुआ आखिर कवि बोल ही पड़ता है–

''आ बैठे हैं बगुले
हंसों की पाँत में
एक क्रांति भूखी है
हर सूखी आँत में
अग्नि–मुखी
मँहगाई में
सब चारों ओर से घिरे।''[16]

इन्द्र जी के नवगीतों में बौद्धिकता का समावेश बड़ी कुशलता और गरिमा के साथ हुआ है युग चेतना की अभिव्यक्ति और प्रकृति के सांस्कृतिक स्वरूप का चित्रण कवि को विशिष्टता प्रदान करती है कवि के शब्दों में प्रकृति के उद्दीपन का भाव और कविता का सौन्दर्यवादी अभिगमन देखें–

''घिरे कहीं
तिरे कहीं मेह
भरे कहीं
झरे कहीं मेह।
फूलों के अंग–अंग में
आग लगी है
पातों के होठों पर
प्यास जगी है।''[17]

मानवीय जीवन के संत्रासों और कटु अनुभवों को स्वर देते हुए व्यवस्था का भ्रष्टाचार तथा खोखली राजनीति के षड्यन्त्र को उजागर करते हुए कवि कहता है–

''हाथों में कैचियाँ–छुरी
काट रहे लोग पाँखुरी।
मौसम ने गमलों में
रोप दी अराजकता
हिंसा की टहनी पर
फल रही विभाजकता

ऐसी कुछ चल रही हवा
कोंपल हर हुई खुरदुरी।''[18]

नम्रता, दया, प्रेम और उदारता को उच्चता दे रहे, हम सदियों से शान्ति का पाठ पढ़ते आ रहे हैं अंहिसा परमो धर्मः के अनुयायी हैं। किन्तु आज की विचित्रता को देखकर कवि को कहना पड़ता है–

''हमने कब चाहा था
ठने महाभारत
हमने कब गढ़ी यहाँ
लाख की इमारत।''[19]

'इन्द्र' जी के नवगीत युग–सापेक्ष शिल्पगत नवता के बावजूद पौराणिक परम्परा से जुड़े हुए हैं। इन गीतों में युग चेतना की अभिव्यक्ति एवं सांस्कृतिक गरिमामयी संकल्पना का चित्रण है। पौराणिक सन्दर्भों के माध्यम से आज की दीन–दरिद्र, दलित, छली, ठगी, कपटी, द्वन्द्व, त्रासदी, विद्रूपता, मुखौटाधारी व्यवस्था, अनैतिकता, मूल्यहीनता आदि को धिक्कारा गया है।

सामाजिक संचेतना

जिस समय नवगीत अपने स्थापित अवस्था की ओर मुखर हो रहा था, उस समय राजनीतिक अस्थिरता और परिवर्तित विचारधाराएँ इस देश में फैली हुई थीं। सामाजिक मूल्य तेजी से टूट रहे थे। देशी और विदेशी नये–नये विचार स्थापित हो रहे थे। हर नवीन विचार धारा मानव जीवन के भविष्य की सुखद स्थितियों का दावा कर रही थी और आम आदमी के हित से जुड़ी हुई होने का साक्ष्य प्रस्तुत कर रही थी। सभी विचारधाराएँ जीवन की व्यावहारिकता से सम्पन्न न थीं तथा अधिकांश मत सर्वहारा और गरीब तबके के लोगों के प्रति सहानुभूति प्रगट करता प्रतीत हो रहा था। इस दौरान संलग्न कई रचनाकार कुछ ऐसे सामाजिक आन्दोलनों से ग्रस्त होकर क्षणवाद और अस्तित्ववाद के भी शिकार हुए जिनकी पृष्ठभूमि न तो देश के जमीन से जुड़ी थी और न ही हिन्दी–कविता की अन्तस्थ सहज वृत्तियों से।

नवगीत के उदयकाल में समूचा राष्ट्र एक अव्यवस्था के साथ–साथ अनिश्चित भविष्य की ओर अग्रसर हो रहा था। लोक में पौराणिक और धार्मिक आख्यानक ग्रंथों का प्रचार–प्रसार था। अंधविश्वासी आस्थाओं ने सामाजिक संचेतना को जकड़कर रखा

था और इसी धार्मिक और नैतिक आस्था ने जन-सामान्य के मन में राष्ट्रीय भावना का संचार किया था। इस राष्ट्रीय आन्दोलन के माध्यम से व्यक्ति कुछ बदलाव का अनुभव कर रहा था। धार्मिक जड़वादी आस्थाओं से निकलकर वह राष्ट्रीय आन्दोलन की व्यावहारिक भूमिका से जुड़ रहा था। आम आदमी को गाँधी जी के द्वारा व्यक्त वैष्णवत्व की उदारवादी और व्यावहारिक वैचारिकी ने आकर्षित किया था। गाँधी लोहिया, जय प्रकाश नारायण जैसे समाजवादी विचारकों ने चिन्तन की नयी भूमि सामने रखी थी। कुछ नवगीतकार व्यावहारिक रूप से समाजवादी आन्दोलन से जुड़कर इसके व्यावहारिक पक्ष से सम्बद्ध रहे थे। शम्भुनाथ सिंह, अनूप अशेष, कुमार शिव, शिव बहादुर सिंह 'भदौरिया' व देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' आदि जैसे नवगीतकार समाजवादी चिन्तन को सोच के नवीन आयामों के साथ नवगीत में समाविष्ट किया है।

इस संदर्भ में डॉ. सत्येन्द्र शर्मा लिखते हैं – ''वास्तव में व्यक्ति हो या समाज, उसके यथार्थ का खण्ड-खण्ड दृश्यांकन लेखक की खण्ड जीवन दृष्टि के ही परिचायक हैं। क्योंकि व्यक्ति का अध्ययन उसकी सामाजिक इकाई का अध्ययन उसके परिवेश को अलग रखकर करना भूल होगी। संदर्भ को अलग रखकर वस्तुपरक विवेचना एकांगी होगी, और ऐसा लेखन अपनी सामाजिक अर्थवत्ता और मानवीय प्रयोजन से च्युत होकर समाज और जीवन के लिए अप्रासंगिक हो जायेगा। व्यक्ति और समाज, जीवन को परिस्थितियों के प्रकाश के भीतर-बाहर से देखकर वस्तुपरक समग्र अध्ययन ही यथार्थवादी सृष्टि है।''[20]

कवि व्यक्तिगत अनुभवों से शून्य होकर कविता नहीं लिख सकता है। सच तो यह है कि कवि भोगे हुए सत्य को कविता में रूपायित करता है और कविता कवि के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। संवेदनशील कवि हृदय की कोमल अनुभूतियों को संचित कर नयी ऊर्जा प्रदान करती है-

''रोता तू उम्र भर रहा है
हँसने की कोशिश भी कर
सिर पर जो लटकी तलवारें
उनको तो गिरना ही है
साहिल में भटकी कश्ती को
भँवरों में घिरना ही है
वस्तु ने है

तुझे उजाड़ा
चल कब्रिस्तानों में
बसने की कोशिश भी कर।''[21]

समाज की व्यवस्थागत खामियों और धाराशाही होती हुई आचार संहिता के प्रति कवि का आक्रोश देखें–

''सागर के ऊपर से गुजर गया अभी–अभी
हहराता अन्धा तूफान
गिरे हुए पत्तों–से बहते हैं, ध्वस्त सभी
बूढ़े इस्पाती जलयान।
कानों से बार–बार एक शब्द टकराता
ज्वार घिरा 'आम आदमी'
अन्तरिक्ष की नीली सरहद तक मँडराता
अर्थहीन शोर मचाती।''[22]

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र जी के रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का चित्रण वखूबी मिलता है। सामाजिक वैषम्य तथा विडम्बनाओं के विरोध में कवि अपनी आवाज बुलन्द करता है–

''मन ही मन
वस्ती का
दिल रहा दहल
आँखों में खून रिस रहा है
पसली में फसा तेज चाकू
मंत्र श्लोक वाणी के नारे
दुहराते शहर में हलाकू।''[23]

सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा शिकार आम आदमी ही रहा है, जो स्वयं की अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए हर पल संघर्षरत रहता है। संतुष्टि, हर्षोल्लास सुख, खुशियाँ जैसे आनन्द के क्षण उसकी जिन्दगी के, तिरोहित हो गये हैं। वह बार–बार जिन्दगी को स्थापित करने की चेष्टा करता है और बार–बार आरोपित व्यवस्था उसे उजाड़ फेंकती है। 'इन्द्र' जी कहते हैं–

''इस जलते जहाज पर ऐसे

कब तक खड़े रहें

पल–पल पर उठते–गिरते हैं

विकट ज्वार–भाँटे

छेड़ रहीं उतुङ्ग–तरङ्गें

तट के सन्नाटे

और कब तलक हम धारा के

यो प्रतिकूल बहें।''[24]

इन्द्र जी अपने नवगीत में दलित शोषित समाज की त्रासदी को व्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ है। अव्यवस्था तथा निर्धनता की मार से परेशान आम आदमी की व्यथा–कथा का सजीव चित्रण इन नवगीतों में मिलता है–

''बन्द हुए घर के खिड़की, द्वारे

पहरे हैं अंगवारे, पिछवारे

जाल–बँधी

हिरनी–सी

डरी–डरी रामकली।

बरसों बीते, कोई वर न मिला

राम कली पत्थर की हुई शिला

सावन में

रीती जल की

गगरी रामकली।''[25]

किसी भी समाज की प्रगति का मानदण्ड नारी की स्थिति से आँका जा सकता है। उन्नत समाज की प्राथमिक बुनियाद स्वतंत्र, शिक्षित, आत्मनिर्भर और संस्कारित औरत है, क्योंकि उनपर प्रत्येक नयी पीढ़ी को सँवारने का दायित्व है। वह राष्ट्र के भावी नागरिक, बच्चे को शिक्षा व्यक्तित्व एवं संस्कार प्रदान करती है। दुर्भाग्य से भारतीय नारी की स्थिति हमेशा खतरे में रहा है। उसे न सिर्फ पुरुष से हीन समझा गया है। अपितु प्रत्येक मामले में उसे पुरुष की क्रीतदासी समझा गया है।

समाज एक खुरदुरा यथार्थ लोक हैं, जिसमें मानवीय उष्मा और विकृतियाँ भी हैं। नवगीत में वस्तुगत यथार्थ तो व्यक्त है ही सामाजिक उच्चाकांक्षा भी प्रकट हुई है।

राजनीतिक संचेतना

राजनीतिक संचेतना ने विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति ब्रिटेन को अपना डेरा उठाने के लिए विवश कर दिया था और इस उद्देश्य के पूर्ति के लिए मानव इतिहास का सबसे अद्भुत एवं अभूतपूर्व युद्ध लड़ा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उसी राजनीतिक चेतना और नेतृत्व पर अन्धेपन का आरोप लगेगा, शायद इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी। ''जिन स्वदेशी हाथों में सत्ता हस्तान्तरित हुई, उनकी मंशा पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। वे लगभग सभी स्वतंत्रता संग्राम की पहली पंक्ति के योद्धा थे, जो राजनीति में विशिष्ट जीवन मूल्यों के हिमायती थे। इसके अतिरिक्त महात्मा गाँधी के सान्निध्य और सिद्धान्तों की आग में अपने चरित्र के कुन्दन को तपाकर चमकाया था। किन्तु सत्ता हाथ से खिसकने न पाये। सत्ता-पिपासु मन सोचने लगा था। उसके लिए ऐसे निर्णय लिये जाने लगे थे जो तात्कालिक रूप से चाहे समाधान लगे, किन्तु कालान्तर में वे विष-बीज बनकर घातक साबित हुए। तुष्टीकरण के धीमी गति वाले जहर ने कालान्तर में अपना प्रभाव दिखाया और जनता भाषावाद, प्रान्तीयवाद, भ्रष्टाचार व कुर्सीवाद का शिकार होती चली गई।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में व्यवस्था के षढ़यन्त्रों का अटूट जाल का पर्दाफास करता हुआ नवगीतकार वैचारिक प्रदूषण की ओर सतत अग्रसर होता हुआ नजर आता है-

''कल जब तुम आओगे
मेरा प्रतिरूप देख उससे घबराओगे
आसन पर और किसी को बैठा पाओगे।
कल जब तुम आओगे
भीड़ तो यही होगी
मालाएँ लिये हाथ
स्वस्तिमंत्र, जय निनाद
लोगों के साथ-साथ
महफिल में, गदगद हो तुम भी दुहराओगे
यों अपनी करनी पर, तिलभर पछताओगे।''[26]

आज सत्ताधारी झूठे आश्वासन के बल-बूते पर राजसत्ता के सिंहासन को हथियाहे बैठे हैं, जिससे आम जनता कुछ उम्मीदें लगाये बैठी थीं एवं जिससे सुख की

कामना की जिज्ञासा थी, सभी व्यर्थ गए। इन्हीं राजनेताओं की कथनी और करनी में घोर विरोध एवं झूठ से लगाव की प्रवृत्ति को 'इन्द्र' जी ने क्षोभयुक्त स्वरों में व्यक्त किया है-

''जाने अनजाने में हमने यह भूल की
देखे सुख के सपने छाँह में बबूल की।
झूठे निकले सारे
आश्वासन,
व्यर्थ हुई साधना।
हिला नहीं प्रभुता का
सिंहासन,
निष्फल आराधना।।''[27]

राजनीतिक जीवन में त्याग की जगह संग्रह, संयम के बदले भोग, दृढ़ता की जगह तुष्टिपरक लचीलापन, कर्मनिष्ठा की जगह भोग-विलास, सार्वजनिक न्याय के स्थान पर पक्षतापूर्ण भाई भतीजावाद, सामंजस्य की जगह विरोध-वृत्ति व असहिष्णुता तथा सादगी की जगह ताम-झाम देखने को मिलता है। कवि यहाँ राजनेता को जो स्वार्थ में लिप्त, अपनी ही धुन की वंसी बजाते हैं। नागदेव। कहकर सम्बोधित किया है। द्रष्टव्य है- बं/

''भूख से चटकता है भले हाड़-हाड़
बच्चों को दे देंगे चावल का माड़
स्वागत है नागदेव !
दूध पीजिये
सुविधा हो आपको
तभी हमें डँसे।
सुनिये मत कुछ भी, अपनी ही कहिये
सिंहासन पर राजन! बैठे रहिये
आप मत अपरिचय का
ढोंग कीजिये
आश्रय में आये पर
यो नहीं हँसे।''[28]

समूचे शासनतन्त्र और उसकी व्यवस्था के प्रति देवेन्द्र जी की प्रतिक्रिया क्षोभ व्यक्त करता है। वह मात्र 'इन्द्र' जी का नहीं जनसाधारण की अभिव्यक्ति बन जाता है।

स्वतंत्र भारत में पनपी दलगत राजनीति की स्वार्थपरता पर करारी चोट करते हुए 'इन्द्र' जी कहत हैं-

"दिल्ली के नेता जी
काशी के पण्डे।
इनके अपने-अपने टोपी और झण्डे ।।
हाथों में लेकर ये फटे हुए छाते
धूप और बारिश में हमको बहलाते
मन में इनके कटुता, मधुर्भींगी वाणी
इन सबने सीखे
ठगने के हथकण्डे।"[29]

उदात्त मानवीय मूल्य

काव्य की सभी विधाओं में आन्तरिक चेतना आवश्यक है। क्योंकि इसी में उदात्त मानवीय मूल्य निहित है। संवेदना में ही मूल्य बोध या नैतिक-बोध का अन्तर्भाव होता है। मूल्य-बोध किसी न किसी संस्कृति से अवश्य जुड़े रहते हैं और संस्कृति निराधार नहीं होती। किसी न किसी जीवन दर्शन से संबंधित दृष्टिकोण उस संस्कृति का आधारवलम्ब होता है। संसार की सत्ता प्रतिपल परिवर्तित होती रहती है। परिवर्तनों का प्रभाव सब पर पड़ता है। संस्कृति और जीवन दृष्टि के स्वरूप में भी परिवर्तनों के निशान दिखाई पड़ते हैं। जीवन-मूल्यों में परिवर्तन घटित होता है। परिणामतः संवेदनाओं के रूप भी बदलते हैं। यही से प्रारम्भ होती है आकलन की अभिनव प्रक्रिया। कविता ही नहीं समूचे साहित्य जगत के मूल्यांकन में संवेदना और जीवन दृष्टि को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

नवगीत की जमीन मूल रूप से मानवीय मूल्य (संवेदना) की औदार्यवादी बुनियाद पर टिकी हुई है, जहाँ व्यक्ति अपने वैयक्तिक अनुभूतियों को सामाजिक सरोकारों से सम्पृक्त बनाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।

नवगीत में अधिकांश कथ्य, जो संवेदनात्मक धरातल पर आरुढ़ है, उसमें मानवीय सहज अनुभूति को उभारा गया है। इसलिए नवगीत आम आदमी की सोच से सम्पृक्त है। व्यक्ति, जो समाज, संस्कार और संस्कृति से घिरा हुआ है, जो राजनीति, धर्म से घिरा हुआ है, जो संस्कारों और गृहस्थी की दैनन्दिनी से ग्रस्त है, वह इन नवगीतों में

आकर प्रत्यक्ष होता है और एक प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करता है। इस संदर्भ में व्यक्ति के आमोद-प्रमोद, हर्षोल्लास, आनन्द खुशियों के अभिगमों को नवगीतों में स्पर्श किया गया है। साथ-ही-साथ त्रासद या संत्रस्त जिन्दगी के पीड़ादायी क्षणों को उजागर किया गया है जिसमें दमन, त्रासदी, अभाव, पीड़ा, शोषण, गरीबी, असम्मान एवं अवहेलना एवं उसका आत्म आक्रोश भी अलग-अलग ढंग से व्यक्त हुआ है। संवेद्य क्षणों की अनुभूतियाँ संस्कृति के उदात्त पक्षों को उजागर करती है-

''मधुऋतु ने कितने मोहक मंत्र पढ़े
फूलों के धनु पर कितने तीर चढ़े
सरसों कितनी
पियरायी खेतों में
गन्ध को
हवा ने घुँघरु पहनाये।''[30]

कवि देवेन्द्र शर्मा इन्द्र जी मानवीय मूल्य के स्तर पर मानवीय विकारों को काव्यांकित करते हैं, तो परिणामतः व्यक्तिगत तथा समष्टिगत जीवन की विसंगतियाँ मुखर होकर सामने आती है आत्मीय संवेदना के आकलन में कवि टूटी उजड़ी हुई रिश्ते-नाते, ध्वस्त होती हुई जिन्दगी का अवलोकन करता हुआ अत्यधिक अन्तस्थ हो जाता है-

''चीजे जैसी बाहर से लगती है
भीतर वैसी आसन नहीं होती।
आदमी-आदमी के संग रह कर जो
आमरण परस्पर जान नहीं पाते
हम ने तो पल में ढहते देखे हैं
पीढ़ी-दर-पीढ़ी के रिश्ते-नाते
हाथों से हाथों का मिल जाना ही
मन से मन की पहचान नहीं होती।
सुलझाने में क्यों और उलझ जाते
नाजुक अटूट सम्बन्धों के धागे
आइना जरा-सी ठेस न सह पाता
कण-कण हो जाता पत्थर के आगे
जो ओठों पर चिपकाये हम रहते

वह क्यों असली मुसकान नहीं होती।''[31]

'इन्द्र' जी के नवगीत में मानवीय मूल्यों का क्षरण तथा संत्रस्त और मानवीय भावनाओं से पीड़ित वर्ग के प्रति आवाज बुलन्द दृष्टिपात होता है। जो सम्पन्नता प्रदान करने का आडम्बरी आश्वासन देते हैं। इन्हीं के शब्दों में-

''घात लगा ड्योढ़ी से मंदिर में जा बैठे
पूजा करते-करते जो खुद प्रभु बन बैठे
क्यों उनको चिन्ता होगी तेरे वन्दन की ?
वे क्या रक्षक होंगे
रण में जो लड़ते हैं
कुंठित करवालों से
माँगे की ढालों से ?
सब के सब पौधे वे तेरे ही रोपे थे
स्वस्ति-तिलक उन सब पर तूने ही थोपे थे
वे पलाश खुशबू देंगे कैसे चंदन की।''[32]

संवेदनाओं का धरातल दुःखद भी होता है और सुखद भी होता है, एवं तटस्थ भी। इन तमाम पड़ावों पर गीतकार स्वयं कहीं तटस्थ नहीं रहता। प्रसंग चाहे प्रकृति का हो या नारी का, श्रृंगार का हो अथवा प्रेम का, वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर वह अपनी उदात्त परिकल्पनाओं से बिम्ब स्थापित करता है, उसमें संवेदनशील आत्मकथ्य अवश्य है-

''छाँव में कदम्ब की बुलाओ न पिया
मीठी-मीठी नींद में सुलाओ न पिया।
ठहरी है दिनभर की सोनजुही आवाजें
सन्नाटे के नीले कंधे पर झुकी हुई
कलियों की सेज तले खुशबू करवट बदले
भावज की बाँहों में ननदी त्यों रुकी हुई
काँपता हवाओं में पात-सा हिया
छाँव में कदम्ब की बुलाओ न पिया।
कंगन की खनक अभी बजती है आँगन में
पाँवों में झनक रही पायल मरजादों की

दिन तो जैसे–तैसे खिसक गये आँचर से
कैसे कट पायेगी रातें ये भादों की
देहरी पर दादा–सा खाँसता दिया
छाँव में कदम्ब की बुलाओं न पिया।''[33]

व्यवस्था का विरोध

नवगीत में व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही रूपों में व्यक्त हुआ है। गीतकार कहीं सीधा प्रशासक वर्ग से जुड़कर उसकी विकृतियों व स्वार्थी लालसाओं को उद्घाटित करता है। तो कभी प्रकारान्तर में राज–व्यवस्था के षडयन्त्रों का पर्दाफाश कर देता है।

व्यवस्था का विरोध उन्होंने मात्र विरोध के लिए ही नहीं किया, बल्कि व्यवस्था की अनीतियों, अन्यायपूर्ण दुरभिसंधियाँ, दुराग्रहों, प्रतारणों, अन्तर्विरोधों आदि से चरमराती मानव–समाज की सम्पूर्ण इतिवृत्तात्मक संरचना के कारण उनका विरोध है, गरीब और अमीर के बीच बढ़ती खाई, दिशाहीन नई पीड़ी का गलत रास्ते पर बढ़ना पैसे की ललक और धनसंग्रह की आदम भूख के तहत टूटते नैतिक मूल्यों को इन्द्र जी ने सामने रखा है। स्वाभिमान के सामने उन्होंने कभी भी आरामपरस्त जिन्दगी के भ्रष्टाचारों का समर्थन नहीं किया और इस दौर के पापाचरणों से आम आदमी को आगाह भी करते रहे हैं।

एक व्यवस्था आती है तो दूसरी चली जाती है, नवगीतकार विष्णु–विराट कहते हैं–

''इनके आने से न सोचो कि उजाला होगा,
वक्त इस हादसे से और भी काला होगा,
हम जहाँ जायेंगे उस जगह दिवाली होगी,
ये जहाँ जायेंगे उस जगह दिवाला होगा।''[34]

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र इसी तथ्य को अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं–

''खण्डित रथ चक्रों की डोर पर
कुण्ठित शर साधे हम,
व्यूह में धँसे।
सात महारथियों के सामने

अपनी लाचारी पर
हम स्वयं हँसे।''[35]

लोकवाद से जुड़े हुए जुझारु योद्धा की तरह नवगीत का शस्त्र लेकर सामने आने वाले प्रथम योद्धा निराला थे, जिन्होंने पूँजीवादी सामन्तवादी व्यवस्था का डटकर विरोध किया और सर्वहारा वर्ग की हिमायत में एक क्रांति को अग्रसर किया-

''दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा
हरे तन-मन पीति पावन
मधुर हो मुख मनोभावन
सहज चितवन पर तरंगित
हो तुम्हारी किरण तरुणा।''[36]

इन्द्र जी के नवगीत में व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में व्यक्त हुआ है। शब्द की शक्ति और टूटती समाज-व्यवस्था का बोध, उबलता हुआ कवि का आक्रोश इन पंक्तियों में व्यक्त है-

''बाहर की दुनिया से आखिर हम कतराकर
कब तक सन्नाटे का स्वगत कथन बुनते
भाँज रहे थे जब तुम
भीड़ों पर तलवारें
हमसे आवाद हुई सपनें की घाटी
नारों के बल पर तुम
उठा रहे मीनारें
हमने तो मुँह सीकर उम्र-कैद काटी
कब तक सिर नीचा कर घायल अँगुलियों से
खण्डित मणि-दर्पण की किरचें हम चुनते
बार-बार सोचा यह
शब्दों की थापों से
चुप्पी के तालो को झटके से तोड़े
ये जो इन फूलों को

रौंद रहे तापों से
मतियाते घोड़ें की वल्गाएँ मोड़े
हाथों पर हाथ धरे कब तक बैठे ऐसे
आक्रोशी–मुद्रा में मन ही मन घुनते।''[37]

व्यवस्था और सभ्यता को झेलते हुए आम आदमी की विवशता का पर्दाफाश करते हुए इन्द्र जी कहते हैं–

''जहर घोला है किसी ने
फिर हवाओं में
लग रहा घुन सभी पिछली
व्यवस्थाओं में
मोह पाँवों में बिछा विद्रोह सिरहाने
अंक में भरपूर
खिलाये पूत वन्ध्या ने।
शोर में भी गूँजता है
एक सन्नाटा
लग रहा आकाश जैसे
साँप ने काटा
डस लिये सारे विशेषण एक संज्ञाने
कृष्ण को गीता
लगे हैं पार्थ समझाने।''[38]

अनुदान और आस्वासनों की राजमुद्राओं पर वह कटाक्ष करता हुआ कहता है–

''हाथों में लेकर ये फटे हुए छाते,
धूप और वारिश में हमको बहलाते
मन में इनके कटुता मधु भींगी वाणी,
इन सबने सीखे
ठगने के हथकण्डे।''[39]

राजनीतिक षड्यन्त्रों की सड़ाँध में खदकती हुई इस व्यवस्था को कवि खण्डित मूल्यों का प्रतीक मानता है। वह एक जागरुक प्रहरी की तरह इन अँधेरे के सौदागरों को चुनौती देता है।

इस प्रकार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' एक चैतन्य मानसिकता से जुड़े ऐसे निर्भीक वक्ता है, जो हर मोड़ पर नेतृत्व के भ्रष्टाचरण को नंगा करते हैं।

दलित संचेतना

'इन्द्र' जी की रचनायें यथार्थ से ओत-प्रोत दिन-प्रतिदिन होती जा रही नैतिकता की ह्रास एवं रोजी, रोटी खोजने के प्रयास में संघर्षरत दलित वर्ग की अभिव्यक्ति बड़ी प्रखरता के साथ प्रस्तुत करती है। उनकी लेखनी ने दलित एवं शोषित वर्ग के प्रति अपने अन्दर छिपी भावना को सफलता से व्यक्त किया है। वस्तुतः कवि का नैतिक दायित्व है कि वह समाज का सर्वांगीण अवलोकन करे, तथा वस्तुस्थिति से हमें परिचित कराके दिशा निर्देश भी करे। समाज के पिछले तथा दलित वर्ग का भी वह भी प्रतिनिधि है तथा उसकी संत्रस्त जिन्दगी का उद्घोषक भी है।

दलित वर्ग के प्रति साहित्य का रुझान एक नये सोच से सम्पृक्त हुआ है। दलित साहित्य के नाम से एक नया ही नारा लगाया गया, जिसके तहत दलितों के प्रति लेखकीय आस्थाएँ व्यक्त भी हुई हैं। यह दलित साहित्य दलित रचनाकारों द्वारा भी लिखा गया है और सवर्ण रचनाकारों की दलितों के प्रति अभिरुचि को भी व्यक्त करता है।

देवेन्द्र शर्मा प्रतिबद्ध रूप से दलित साहित्य के सर्जक नहीं हैं या उन्हें दलित साहित्यकार की कोटी में भी नहीं रखा जा सकता, हाँ समाज के पिछड़े वर्ग के प्रति उनकी संवेदनाएँ अवश्य मुखर होती रही हैं। यह संवेदनात्मक सोच अधिकांश साहित्यकारों में देखी जा सकती है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने जहाँ एक ओर 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'जुही की कली' की रचना की, वहीं उन्होंने 'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिखारी' को लक्ष्य में रखकर भी अपनी दलित-वर्गीय दृष्टि को भी व्यक्त किया है।

एक बड़े फलक पर यदि देखा जाय तो कहा जा सकता है कि 'इन्द्र' जी समाज के पिछड़े वर्ग के प्रति उदात्तवादी नजरिया रखते हुए अपने कोमल उद्‌गारों को व्यक्त किया है।

'इन्द्र' जी के नवगीत दलित-शोषित समाज की त्रासदी को उसकी सम्पूर्णता में देखने और व्यक्त करने में सफल एवं समर्थ सिद्ध हुए हैं। स्वयं 'इन्द्र' जी कहते हैं-

''सब-कुछ सहती है
तिल-तिल खटती है
मरती कटती है

कब कुछ कहती है

मीठी चुप्पी है

कड़वी बानी है

आँसू पीती है

थोड़ा लेती है

ज्यादा देती है

गागर रीती है

गहरी प्यासें हैं।

छिछला पानी है।''[40]

गरीबी की मार से पराजित जर्जर फटेहाल जिन्दगी के थके आत्मस्वीकृति व्यक्त करने के अलावा संघर्ष का रास्ता दिखाई नहीं देता है। दलित परिवार और उनकी समस्याएँ इन रचनाओं में देख सकते हैं-

''पेट में न रोटी हो

जेब में न पैसे

बॉस अगर पूछे यह

है मिजाज कैसे

होठों पर चिपका कर मक्खन-मुस्काने

घिसा-पिटा उत्तर दे 'आपकी दया है।''[41]

शोषण की चक्की में पिसते मजदूरों की असहाय जिन्दगी का लेखा-जोखा करते समय 'इन्द्र' जी की दृष्टि वहाँ तक जाती है जहाँ अभेद चुप्पी पसरी है। यह चुप्पी खाली पेट भूख की आग में सुलगती आँतों की है-

''बहती थी जो यहीं कहीं पर, सूख गयी वह

जल की धारा।

मुँह ढाँपे बालू पर लेटा, गुम सुम-

वे आवाज किनारा।।

ऊँध रही बीमार दुपहरी

रूख खाँसते-पत्ते पीले

धुंध भरा सन्नाटा रचते

झाड़ नुकीले मरु के टीले

समय खिसकता रीढ़ झुकाये जैसे–

थका–लुटा बंजारा।''[42]

युग चेतना के स्वर से सम्पृक्त मानव–कल्याण और उदात्त मूल्यों के निर्माण के साथ आस्था का आवाज दलित संचेतना की अन्तर्वस्तु और सम्प्रेषण की नयी भंगिमाओं को लेकर जनता के समक्ष 'इन्द्र' जी अपनी आवाज बुलन्द करते हैं। जैसे–

''कल की रात वही नायक होंगे यहाँ

अभिनव में जो आज लग रहे दास हैं,

और बहुत दिन चल न पायेंगे आपके

छल–छद्मों के

ये समझौते आपसी

सुनो गौर से अर्थहीन कोलाहल में

दूर कहीं से

आती है आलाप–सी।''[43]

शोषित वर्ग की पक्षधरता एवं व्यवस्था का विरोध का स्वर, भाषा की सहजता अभिव्यक्ति की मार्मिकता तीव्र मानवीय संवेगों को 'इन्द्र' जी के नवगीत में बखूबी प्रस्तुत किया गया है–

''उतरन पहन सजाते हैं तन

राजा जी की जूठन खा कर

पीढ़ी दर पीढ़ी से हम हैं

राजा जी के बँधुआ चाकर

राजा जी दिल के उदार हैं

बातों लगते कठोर से

कूड़े–कचरे के ढेरों से

चुनते है कुछ कागज, पन्नी

दिन भर खटते पर मिल पाते

कुछ पैसे दो–चार अठन्नी

अपने भी दिन कभी फिरेंगे

बँधे हुए इस आस–डोर से।''[44]

आम आदमी की भागीदारी

इन्द्र जी के नवगीतों में आम आदमी के प्रति व्याप्त बेईमानी को एक विशाल पटल पर दृश्यांकित किया गया है।

वस्तुतः रचनाकार का यह एक नैतिक दायित्व भी है कि वह आम आदमी से जुड़ कर अपनी बात करे, खास आदमी के षड्यंत्र को उजागर करे और सामान्य व्यक्ति की संवेदना को समझने की यत्न करे। उन्होंने अपने नवगीतों में भारतीय समाज के मध्यवर्गीय परिवारों का विस्तृत फलक पर चरित्रांकन किया है। उन्होंने दलित और अभावग्रस्त समाज को ही रेखांकित करने का दुराग्रह नहीं रखा, बल्कि मध्यवर्गीय आम आदमी की जिन्दगी में भी उन्होंने झाँकने का यत्न किया है।

जब देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' आम आदमी की दैनन्दिनी का स्पर्श करते हैं तो उसमें भारतीय जीवन की मूल संरचना तथा सांस्कृतिक पहचान का भी अनुभव होता है और यही पहचान आम आदमी को साथ लेकर साहित्य से जुड़ने की संकल्पधर्मिता का एहसास कराता है।

नवगीत की जमीन मुक्त-रूप से मानवीय संवेदनाओं की बुनियाद पर टिकी हुई है। जहाँ व्यक्ति अपनी वैयक्तिक को सामाजिक सरोकारों से सम्पृक्त समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। आम आदमी की पीड़ाओं को व्यक्त करता हुआ कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' कहते हैं-

''अश्रु है वह
बन्द पलकों का
कपोलों से ढुले आँचल में
अचानक है
फूल है वह
गंध-अलकों का
चुप्पियों की धार
कथानक है।''[45]

शासित और शासक के बीच बिगड़ते सम्बन्ध, बढ़ते अन्तराल जैसे एक खौफ-सा वातावरण उपस्थित कर देते हैं। कवि 'इन्द्र' जी अपने इस नवगीत में आम आदमी के भयातुर अवस्था में सहमा हुआ रूप चित्रित करते हैं-

''धुँए में डूबी दिशाएँ

फूटता
ज्वालामुखी है
सख्त चेहरे पर
प्रशासक के दहकती
बेरुखी है
बात वृत्त की करे कोई
है न यह उसको गवारा।''[46]

नवगीतकार आम आदमी के साथ प्रतिबद्ध है। राजनीतिक बदलाव और उसकी विद्रुपता को समग्र रूप से उल्लिखित करता है। 'इन्द्र' जी की सोच वक्त के हालात को समेटे हुए एक विस्तृत फलक पर उभर कर सामने आती है–

''व्यर्थ गूँगी प्रतीक्षा ने
एक फल की
आस की
पत्तिया सूखी बिछी थी
राह में
मधुमास की
बाँस, काँस, बबूल
वन में
जी–हुजूरी बो गये।''[47]

समूचे शासनतन्त्र और उसकी व्यवस्था के प्रति नवगीतकार 'इन्द्र' जी जो प्रिव्रिक्रिया और क्षोभ व्यक्त करते हैं, वह केवल इनकी ही नहीं अपितु आम आदमी की अभिव्यक्ति बन जाता है। इन व्यवस्था ने शहर में ही नहीं, गाँव और देहातों में पूरी तरह कहर बरसाया है। 'इन्द्र' जी के शब्दों में– पा।

''समन लेकर
द्वार पर आया सिपाही
कल कचहरी में
हमारी है गवाही
　　दूर से आँखें दिखाकर
　　हमें घुड़केगा दरोगा

और फिर लम्बी जिरह में
झूठ साबित सत्य होगा
सभी मुजरिम रिहा होंगे
बा–मशक्कत
मजा पायेगी उमरभर
फिर किसी की बे गुनाही।''[48]

आम आदमी का टूटने का क्रन्दन और व्यवस्था से उत्पन्न आक्रोश से चरमराते सम्पूर्ण तन्त्र को 'इन्द्र' जी ने अत्यधिक तीक्ष्ण अभिव्यक्ति दी है। वर्तमान विभिन्न परिस्थितियों को झेलते हुए आम–आदमी की विवशता का पर्दाफाश करते हुए कवि कहता है–

''किस सुमेरू से
आँख मिलायें ये भला
अपनी मिट्टी
इनको मोतीचूर हैं
विधवा कर देते हैं ये,
उस माँग को
जिसमें शोभित
इनका ही सिन्दूर है,
अमृत झरता है इनके हर शब्द से,
नन्दन को ये कर देते वीरान सब।''[49]

शोषण, संत्रास, अन्याय और अनीतियों का लेखा जोखा

जब देश आजाद नहीं था, तो एक–मात्र उद्देश्य उसकी आजादी का था। स्वतंत्रता प्राप्त होते ही जनसामान्य में देश की तीव्र प्रगति की आशा जागृत हो उठी। आम आदमी को रोजगार आसानी से मुहैया होगी। भूख से किसी की मृत्यु न होगी और न किसी को नंगे बदन खुले आकाश के नींचे सोना पड़ेगा। तीसरा पंचवर्षीय योजना के समाप्त होते ही लोगों को यह विश्वास हो गया कि उन्होंने जो सपना देखा था, उसका साकार होना कठिन है। साहित्यकारों का वर्ग इसमें सम्मिलित लोगों की पहचान आसानी से कर लिये। परिमणाम स्वरूप शोषण, संत्रास, अन्याय और अनीतियों की अभिव्यक्ति के साथ

विसंगतियों को चिन्हित करने वाली कविता सामने आने लगी। जैसे-जैसे स्थिति खराब हुई वैसे-वैसे साहित्य की सभी विधाओं ने अपनी कलम की नोक से इसे कुरेदा तथा इन तमाम षड्यन्त्रों का पर्दाफाश किया। साहित्य की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह समाज की संरचनात्मक प्रक्रिया को मजबूत बनाये रखे तथा किसी भी आरोपित प्रदूषण से उसे दूर रखे।

साधन सम्पन्नों की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण उनकी साधन-विहीनों के प्रति बढ़ती उदासीनता एवं दूरी जन-सामान्य के जीवन में अन्याय एवं अनीतियों का भाव-सा माहौल उत्पन्न करता है-

''आसमान छूती है छूने दे
कहाँ नहीं मँहगाई
बढ़ने दो भाव
भ्रष्टाचारी हम यदि तो वे क्या
पैसे के बल पर सब
जीतते चुनाव।''[40]

आज का समय केवल व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए जोखिम से भरा है। चारों तरफ अन्याय, अत्याचार, शोषण, संत्रास सुरसा की तरह मुख फैलायें जन-सामान्य को निगलने के लिए आतुर है। 'इन्द्र' जी की वाणी मुखरित हो उठी है-

''हर तरफ ही
गूँजती है चीख
आहें और कराहें
त्राहि-त्राहि पुकारती हैं
शून्य में
बेबस निगाहें
सभी लपटों से घिरे हैं
कौन किसको दे सहारा।''[51]

वर्तमान युग के राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, धोखाधड़ी, मूल्यहीनता, अन्याय, अत्याचार इतना बढ़ गया है कि सत्ता के संरक्षक अपनी स्वार्थपरता

के लिए कभी मंदिर–मस्जिद के नाम पर तो कभी जात–पाँत के नाम पर, कभी आरक्षण के नाम पर दंगल करवाते हैं और खुद को सर्व–धर्म–सम–भावी मानते हैं। जैसे–

"बड़े–बड़े अपराध कराते
छोटे–छोटे स्वार्थ हमारे
मन्दिर–मस्जिद एक मानकर
भेद करें
हिन्दू–मुस्लिम में
मन जब पूरब को होता है
तब चल देते
हम पश्चिम में
दीपक राग सुनाने वाले
पाँव तले दहके अंगारे
अक्सर हम
अपनी कथनी का
करनी में अनुवाद न करते
शब्द आचरण के अनुगामी
भूले से यह
याद न करते।"[52]

आम आदमी की त्रासदी, देश की कुव्यवस्था और जिम्मेदार नेतृत्व पर 'इन्द्र' जी का असंतोष इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है–

"लौटा लो बन्धु ! कृपा भाव
आँच में उपेक्षा की
कुछ दिन तो और दहें
राजमहल के भीतर चल रही
अभिषेकित परम्परा
अभिमन्त्रित स्वयंवरा
कुछ पल प्रतिहारी के वेष में
यों ही दरवाजे पर खड़े रहें
कल हम भी शब्द–वाण छोड़ेंगे

सहने दो और अभी घाव।''[53]

आधुनिक समय की अनीतियाँ तथा अन्याय का दौर 'इन्द्र' जी के नवगीत में साफ झलकता है। राजनेताओं के चमचे एवं परिजनों पर कटाक्ष करते हुए इन्द्र जी कहते हैं-

''भर दो कज्जल कषाय ज्योतिर्धर नयनों में
भागने न पाये तुम इसको कर दो लँगड़ा
आलोक-शिखर पर चढ़ने की जुर्रत न करें
राजाज्ञा है, पद मर्दन से करदो कुबड़ा
बिजलियों ! तड़प कर गिरो बादलो ! घुमड़ घिरो
वाताहत विषवृक्षों ! इसके पथ पर उखड़ों
चेहरे पर पट्टी बाँध अनंद कुहाओं की
ले जाकर डालो इसको अँधी घाटी में
उग पाये जहाँ न फिर से कोई क्रांति-किरण
दफना दो इसको इतनी गहरी माटी में
मुट्ठी भर किरणों के बल पर यह उछल रहा
दूबों-सा इसको कुचलो सत्ता के बछड़ों।''[54]

सामयिक समस्याओं से साक्षातकार

दोहा, गजल और गीत से नवगीत तक की यात्रा में कवि कहीं व्यक्ति-चेतना के संस्कारों से साक्षात्कार कराता है, तो कहीं सामाजिक संवेदना को उभारकर सामने लाता है। इसमें व्यष्टि से समष्टि का एक अद्भुत तदात्म्य दिखाई देता है। गीत मनुष्य की अंतर्वेदना को अभिव्यक्ति देने के रागात्मक माध्यम है। मानव-जीवन ही राग-बोध से जुड़ा है। इसलिए गीत लय, भाव-विचार और छन्दों पर आधारित है। इनकी रूपबद्ध परिणति ही गीत को संवेदनशील व बोधगम्य बनाने में सहायक है।

इनके काव्य में जन-जीवन की विसंगतियाँ, टूटते मूल्यों की पीड़ा एवं राजनीतिक से प्रभावित छल-प्रपंचों की प्रतिक्रियाएँ गीतकार के युग-बोध को प्रमाणित करती है। 'इन्द्र' जी के काव्य में सामयिक संदर्भों के साथ मानवीय मूल्यों को टूटने एवं गिरावट की ओर जागृत कराने का भावबोध भी छुपा हुआ है। निम्नलिखित दोहें में 'इन्द्र' जी अपनी अन्तर्मन की वेदना को रेखांकित करते हैं-

''रही घिसटती जिन्दगी, जब टूटे से पाँव

बिना चले ही आ रहा, निकट मृत्यु का गाँव।''[55]

'इन्द्र' जी सामयिक समस्याओं को स्वीकारते हुए उसकी संकीर्णता को नकारते भी है साथ ही भूख से बेचैन लोगों का इतिहास भी दोहे के माध्यम से रचते हैं-

''चूल्हा ईंधन के बिना दिनभर रहा उदास
भूख बाचती रह गयी रोटी का इतिहास।''[46]

कवि को अपने अतीत से बेहद लगाव है। स्वर्णिम आनंद का उद्रेक में कवि की जीवन संगिनी की यादें छुपी है। उनका विरही मन कैसे तड़पता है-

''दे मसान में साधता कालजयी संगीत
शायद सुनकर जी उठे, फिर से स्वर्ण अतीत।''[57]

समाज में फैली विसंगति और दरिद्रता से कवि का मन पीड़ित है इसका अनुमान इन दोहों से मिल जाएगा-

''खाल ओढ़ कर शेर की, वन में बसे सियार।
लगे भूँकने जब पड़ी, कुटिल काल की मार।

खोज रहा खोयी नदी, मैं मरुथल के बीच
मिल जाये तो, आज से दूँ लहरों को सींच।

सबको रोटी चाहिए, सबको मिले मकान
सबके तन पर हो वसन, सब हो यहाँ समान।''[58]

'इन्द्र' जी के इस गजल में सामयिक जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित किया गया है, तो कहीं व्यवस्था को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है नगर बोध की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति इनकी ग़ज़लों में भी देखने को मिलती है-

''देखिये आप भी उस शख्स को क्या माँगता है,
आग में फूल खिलाने की सजा माँगता है।
लोग हैरत से उसे देखते रहते हैं कि वो,
अपने कातिल को बचाने की दुआ माँगता है।
लोग दुनिया के अभी तू ने कहाँ देखे हैं,
कितना नादान है तू आम-ए-वफा माँगता है।
जिसकी पलकों पे लरजती ही रही नीमशबी,
वो दिया खुद ही दरख्तों से हवा मांगता है।
उसकी तुखईल खलाओं में अबस उड़ती है,

जिसके पैकर के लिए लफ़्ज़ी-रिदा माँगता है।
रात भर सो नहीं पायी वो किसी दहशत से,
आँखें झपने के लिए बाद-ए-सबा माँगता है।
खुश्बू-ओ-हुश्न-ओ लताफत की हिफाजत के लिए,
गुंच-ए-गुल भी सितारों की कबा माँगता है।''[59]

चोट सहकर मनुष्य का स्वभाव व्यंग्यात्मक हो जाता है। आधुनिक जीवन की कटुताओं की अभिव्यक्ति के कारण इन्द्र जी का ग़ज़ल भी व्यंग्यप्रधान लगता है। युग यथार्थ की विसंगतियों इस व्यंग्य की प्रेरक स्थितियाँ है। 'इन्द्र' जी की स्व-रचित ग़ज़ल भावों को मोतियों में पिरोकर सामयिक समस्याओं से साक्षात्कार कराता है- की/

''गुलों के जख्म पे तू तितलियों के पर रखदे,
अगर ये हो सके तो बिजलियों के डर रखदे।।
बँधे हैं पाँव मेरे चल तो मैं न पाऊँगा,
तू मेरे ख्याब की किस्मत में ही सफर रखदे।।
न तो हयात हँसी मंजरों की देख सकूँ,
तू मेरी आँख में अंधे की इस नजर रखदे।।
वो तेगदस्त कबीले मेरी तलाश में हैं,
तू मेरे हाथ में टूटा हुआ सिपर रखदे।।
मुझे क्यों धूप में साये की आरजू होती,
तू मेरी रूह में आतिश का इक शजर रखदे।।
मैं जिसके साथ कभी गुफ्त गू न कर पाऊँ,
मेरे करीब ही पत्थर का इक बशर रखदे।।
तू जिस भी शक्ल में चाहे मैं ढल तो जाऊंगा,
मगर ये शर्त है साँचे को तोड़ कर रखदे।।
मैं तुझसे चाँद सितारों की तलब कब करता,
मेरे नसीब में जलती हुई सहर रख दे।''[60]

आज व्यक्ति के सामने से दिशाएँ लुप्त हो चुकी है। भटकन एवं अस्थिरता जीवन की अनिवार्य विडम्बना है। अपने ही घर में लोग तन्हा-सा महसूस कर रहा है इस ग़ज़ल में आस-पास की नंगई को व्यंग्य की पैनी नोंक से 'इन्द्र' जी ने छेदा है। द्रष्टव्य है-

''न तो उदासियाँ रहीं नहीं रहे वो रंज-ओ-गम।

ये बात और है भुला सके कभी तुम्हें न हम।।
कोई कहे, कहीं तलक ये चश्म अश्कबार हो,
है और भी जमाने में तो जिन्दगी के पेच–ओ–खम ।।
न हर नफस पे कोई भी तो अपना अख्तिार है,
न जीस्त अपने हाथ में न खुदकुशी ही दम–व–दम ।।
रिझायें कैसे बज्म को न जाने क्या वो चाहती,
जो सबके दिल को छू सके नहीं वो हम सुखम–फहम ।।
सुकून की तलाश में फिरे कहाँ–कहाँ नहीं,
दिखा न कोई दर ही, मिला नहीं कोई हरम ।।
ठहर गया है उम्र का ये काफ़िला–अब उस जगह,
न जिन्दगी–औ–मौत का जहाँ रहा कोई वहम ।।
तकल्लुफात–ए–जिस्म–ओ–रूह में ये सिन गुजर रहे,
रुलाता अब हर इक रस्म, हँसाता अब हर इक सितम ।।''[61]

मानवीय संवेदनाओं का निदर्शन

मनुष्य के सामाजिक विकास में नवगीत–गीत समय–समय पर युगानुरूप सर्जनात्मक भूमिका का निर्वहन किया है। गीत भले ही व्यक्ति–विशेष के अंतरंग क्षणों की अभिव्यक्ति और उसके निजी सुख–दुःख की गेयता को प्रस्तुत करने का माध्यम रहा हो, परन्तु आज गीत–नवगीत समाज व्यवस्था की खामियों मानव–मन की कमजोरियों को व्यक्त करती हैं। मानवीय संवेदनाओं और हकीकतों से जुड़कर बार–बार नये रूप ग्रहण किये हैं। 'इन्द्र' जी की नवगीत की खास विशेषता है कि आज की नंगी हकीकत को टटकेपन के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

विगत पृष्ठों में हम स्पष्ट कर आए हैं कि देवेन्द्र शर्मा इन्द्र का सम्पूर्ण सृजन मानवीय संवेदनाएँ गृह–समाज–संकृति तथा धर्म की प्राचीरों से निबद्ध नहीं रहीं, बल्कि इन सबसे जुड़कर इनसे बाहर भी झाँकती रही हैं। इन्द्र जी ने इसी संवेदनात्मक अनुभूति के पटल पर मानवीय मन वैविध्यपूर्ण अविधारणाओं को तथा आदमी के अपने निर्धारण को सामने रखने का यत्न किया है।

कविता की धुरी ही संवेदना की पीठ पर खड़ी होती है और साहित्य में संवेदनाओं का वेग ही उसको सम्प्रेषण की प्रभावमयी धारा से जोड़ता है। इन्द्र जी के नवगीत इन तमाम विशेषताओं से संलग्न देखे जा सकते हैं।

आपसी स्नेह सम्बन्ध के अभाव में 'इन्द्र' जी क्षुब्ध एवं परेशान, समाज के सांस्कृतिक परिवर्तन को देखकर जिन्दगी में मानवीय संवेदना पर मँडराते खतरे की ओर संकेत करते हैं। इसी की खोज में वे बार-बार अतीत की याद में वर्तमान को जीते हैं। त्रासदी मानवीय संवेदना का अभिन्न अंग बन गया है-

''कल तक तो थे हम जल के कमल
रेती के मीन हो गये हैं।
दफनाकर भीतर की खामोशी,
सड़को की भीड़ों से आ मिले।
होठों पर चिपकर नारे
जोड़े हर-रोज नये सिलसिले
कल तक तो रिश्तों से थे बँधे।
अब हम स्वाधीन हो गये हैं।
कस्बे की याद नहीं करते हैं
शहरों में जबसे हम आ बसे।
ऐसी केंचुल हमने ओढ़ी,
अजनबी हुए अपने आप से।
कल तक हँसते थे हर बात पर,
अब कुछ गमगीन हो गये हैं।''[62]

कवि की दृष्टि सामाजिक विषमताओं की जाँच-पड़ताल करती हुई व्यवस्थागत खामियों पर पड़ती है। ऐसी स्थिति में व्यवस्था के अतिरेक के प्रति जन-आक्रोश का स्वर सुनाई पड़ती है-

''मन-ही-मन
वस्ती का
दिल रहा दहल।
आँतों से खून रिस रहा है
पसली में फँसा तेज चाकू

मंत्र, श्लोक, वाणी के नारे

दुहराते शहर में हलाकू।

सड़कों पर

सन्नाटा

है रहा टहल।

सँगीने आग उगलती हैं

यहाँ–वहाँ उठ रहे धमाके

आसमान बाज–सा झपटता

गौरेया–सी धरती काँपे

कर्फ्यू है

कौन करे

अमन की पहल।''[63]

शोषण की चक्की में पिसते सामान्य–जन की असहाय जिन्दगी का इन्द्र जी लेखा–जोखा करते है। 'चुप्पियों की पैजनी' नवगीत संग्रह मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत है। अंधेरे भविष्य के वन प्रान्त में भटकते दिशाहीन मन की व्यथा, जीवन–संघर्ष में पराजित थके कदमों की चुप्पी निम्नलिखित रचनाओं में मिलती है–

''दिन में ही घनी हुई

रात की अंधेरी

गलियों में घुस आये

लुटेरे अहेरी।

हाथों में लाठी हैं, चाकू है भाले है

चेहरे पर मजहब का ये नकाब डाले हैं

सच है यह बहम नहीं

इनमें है रहम नहीं

काटेंगे गर्दन ये

मेरी या तेरी

रानी का कत्ल हुआ, शोकमग्न राजा है

महल में हिफ़ाजत का टूटा दरवाजा है

जली हुई चौखट है

चौबारे मरघट हैं
पलभर में शहर हुआ
मलवे की ढेरी।''[64]

व्यवस्था के नाम पर लोगों की भावनाओं को मुहरा बनाकर अपनी चाल में कामयाब राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थसिद्धि में लीन है। जन-संवेदना से खेलती राजनीति के सामाजिक यथार्थ का खुलासा करते हुए कवि चारित्रिक स्वरूप को प्रस्तुत करता है-

''कल जब तुम आओगे
मेरा प्रतिरूप देख उससे घबराओगे
आसन पर और किसी को बैठा पाओगे
कल जब तुम आओगे।
भीड़ तो यही होगी
मालाएँ लिये हाथ
स्वस्तिमंत्र, जय निनाद
लोगों के साथ-साथ
महफिल में गदगद हो तुम भी दुहराओगे
यों अपनी करनी पर, तिलभर पछताओगे ?
तुमको जिद थी मेरा
जीते-जी होठों पर
नाम तक नहीं लोगों
मेरे आलोचक-वर
पर अब सबसे ज्यादा आँसू बरसाओगे
शोक-सभा में मुझते रिश्ते बैठाओगे।''[65]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ सम्पूर्ण व्यवस्था के नंगेपन को उजागर करती हैं, 'बरसों बीत कोई वर न मिला, रामकली, पत्थर की हुई' पंक्ति में व्यक्ति जब नैराश्य के अंधकार में डूब जाता है तब उसकी आंतरिक संवेदनाएं भी जड़ हो जाती हैं, भावशून्य या संवेदनशून्य स्थिति व्यक्ति को निर्जीव और निस्क्रिय घोषित कर देती है। देवेन्द्र जी के नवगीतों में ऐसे पड़ाव अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं।

अंत में इस निर्धारण से जुड़ते है कि देवेन्द्र शर्मा इन्द्र समाज के सम्मुख खड़े होकर सार्वजनिक रूप से अपनी उद्घोषणाओं को दुहराते हैं तथा अपने समय के साक्षी बनकर

सत्य को उजागर करते हैं। समाज, परिवार, संस्कृति, धर्य, राजनीति व्यक्ति तथा समष्टि तक की तमाम संवेद्य धारणाओं को वह रेखांकित करते हुए अपने निर्धारिणों को पुष्ट करते हैं तथा अपनी सर्जनात्मक नैतिक जिम्मेदारी का निर्वाह करते हैं।

किसी वर्गवादी संचेतना के सांकीर्ण्य से जुड़कर वह किसी राजनीतिक पार्टी के प्रचारक बनना पसंद नहीं करते उन्होंने जो कुछ भी कहा है, वह आम आदमी के सामान्य सोच से और उसकी जीवन्त अनुभूतियों का अनुभव करके ही कहा है। उनके नवगीत अपनी नव्यता का प्रमाण संरचनात्मक स्तर पर ही नहीं बल्कि वर्ण्य के अभिनवीकृत विस्तृत सोच से जुड़कर भी करते है। यही कारण है कि नवगीतकारों की लम्बी कतार में देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' अपनी अलग पहचान बनाए हुए है तथा अपने समय का साधिकार प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं।

संदर्भ सूची

1. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' घाटी में उतरेगा कौन पृ. 43
2. वही वही पृ. 48
3. वही वही पृ. 55
4. वही वही पृ. 57
5. वही वही पृ. 58
6. वही हम शहर में लापता हैं पृ. 71
7. वही कुहरे की प्रत्यञ्चा पृ. 34
8. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 44
9. वही वही पृ. 22
10. वही वही पृ. 26
11. वही व्यक्ति और अभिव्यक्ति
12. वही जीवन और सृजन
13. वही कुहरे की प्रत्यञ्चा पृ. 19
14. वही वही पृ. 39
15. वही पंखकटी महराबें पृ. 31
16. वही वही पृ. 37'
17. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 23
18. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 44
19. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 65
20. हिन्दी की नवगीत परम्परा : विविध आयाम पृ. 103
21. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र चुप्पियों की पैजनी पृ. 36
22. वही वही पृ. 44
23. वही वही पृ. 52
24. वही पंखकटी महराबें पृ. 27
25. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 69
26. वही वही पृ. 55
27. वही पथरीले शोर में पृ. 50
28. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 39

29. वही वही पृ. 55
30. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 21
31. वही वही पृ. 25
32. वही वही पृ. 33
33. वही वही पृ. 32
34. डॉ. विष्णु विराट, समय–साक्ष्य है पृ. 37
35. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 64
36. निरालाः अपरा पृ. 160
37. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र कुहरे की प्रत्यञ्चा पृ. 17
38. वही वही पृ. 24, 25
39. वही दिन पाटलि पुत्र हुए पृ. 55
40. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 50
41. वही वही पृ. 48
42. वही वही पृ. 53
43. वही अनन्तिमा पृ. 61
44. वही वही पृ. 80
45. वही घाटी में उतरेगा कौन पृ. 52
46. वही वही पृ. 58
47. वही हम शहर में लापता है पृ. 27
48. वही वही पृ. 45
49. वही वही पृ. 47
50. वही घाटी में उतरेगा कौन पृ. 35
51. वही वही पृ. 58
52. वही वही पृ. 36
53. वही कुहरे की प्रत्यञ्चा पृ. 58
54. वही वही पृ. 76
55. वही जीवन और सृजन पृ. 118
56. वही वही पृ. 110
57. वही वही पृ. 111

58. वही वही पृ. 111
59. वही गजल
60. वही गजल
61. वही गजल
62. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 43
63. वही वही पृ. 52
64. वही वही पृ. 76
65. वही वही पृ. 55